त्वंपद विवेक

(लेखक श्री महात्मा राम आश्रम)

छांदोग्योपनिषत् के छटे अध्याय में 'तत्वमसि' महावाक्य के अन्तर्गत त्वं पद के वाच्यार्थ में जो अविद्या विशिष्ट चैतन्य है उसको जीव कहते हैं । इस जीवात्मा की तीन अवस्था, तीन शरीर तथा षट् ऊर्मि, षट् विकार और पांच कोश ये उपाधि हैं । इन उपाधियों के सम्बन्ध से यह जीवात्मा अपने स्वरूप को भूल कर अनेक योनियों में अधः ऊर्ध्व घटी यन्त्र चक्र के समान भ्रमता रहता है । कभी छुटकारा नहीं पाता । कदाचित् किसी सत्संगति के प्रभाव से तथा पूर्व जन्म के पुण्योदय से संसार के घोर तापों से संतप्त होकर जन्म मरण के दुःखों से छूटने के लिये, जिसको विश्वेश्वर भगवान् के चरणों में अनुराग उत्पन्न हुआ है वह मुमुक्षु किसी योग्य सत्गुरु की शरण को प्राप्त होकर अपने कल्याण के लिये अनेक प्रकार गुरु सेवा शुश्रूषा करता हुआ उस परमात्म सम्बन्धी ज्ञान को श्रवण करने की जिज्ञासा करे जो अपने कल्याण का साधन है तथा उन्हीं शास्त्रों का अभ्यास करे जो गुरूपदिष्ट अर्थ के अनुकूल हों । जिन शास्त्रों में ज्ञान के साधन विवेक वैराग्यादि कथन किये हैं उनका बारंबार विचार करना चाहिये । आत्मज्ञान के मुख्य चार साधन हैं विवेक, वैराग्य शमादि षट् संपत्ति और मुमुक्षुत्व । इन चारों साधनों में प्रथम विवेक का विचार करते हैं । जिस विचार द्वारा सत् असत् का निर्णय किया जाय उसे विवेक कहते हैं । सत् वस्तु एक आत्मा है असत् वस्तु अनात्मा है । आत्मा अनात्मा का जो परस्पर सम्बन्ध है वह विवेक द्वारा निवृत्त होगा और त्वं पदार्थ रूप जीवात्मा के विवेचन करने से ही इस आत्मा अनात्मा का विवेक सिद्ध होगा । इसलिये हम को जीवात्मा का ही विचार करना उचित है ।

जाग्रत्, स्वप्न और सुषुप्ति ये तीन अवस्था हैं ।

(१) जाग्रत् अवस्था में पांच ज्ञान इन्द्रिय, पांच कर्म इन्द्रिय पांच प्राण, मन, बुद्धि, इन सतरह तत्वों द्वारा जीवात्मा व्यवहार करता है उस का नेत्र स्थान है, वैखरी वाणी है, स्थूल भोग का भोक्ता है । क्रिया शक्ति है, रजो गुण है, जाग्रत् अवस्था के अभिमान से जीव का "विश्व" नाम है ।

(२) स्वप्न अवस्था में जाग्रत् अवस्था के देखे सुने तथा भोगे हुए पदार्थों के संस्कारों से उन उन पदार्थों की आभास मात्र प्रतीति जिसमें होती है उस का कण्ठ स्थान है, मध्यमा वाणी है, सूक्ष्म (वासना मात्र) भोग है, ज्ञान शक्ति है, सत्व गुण है, और स्वप्नावस्था के अभिमान से जीव का "तैजस्" नाम है ।

(३) सुषुप्ति अवस्था में अत्यन्त गाढ़निद्रा में सोये हुए पुरुष की बुद्धि अज्ञान में विलीन हो जाती है । उसका हृदय स्थान है, पश्यन्ती (पश्यन्ति) वाणी है, आनन्द का भोक्ता है, द्रव्य शक्ति है, तमोगुण है, और सुषुप्ति अवस्था के अभिमान से जीव का 'प्राज्ञ' नाम है, ये तीनों अवस्था जीवात्मा की उपाधि रूप हैं । आत्मा

इन का साक्षी है और इन से न्यारा है ।

तीन शरीर ।

स्थूल, सूक्ष्म, कारण यह तीन शरीर हैं ।

(१) आकाशादि पंचीकृत पंच महाभूतों के पच्चीस तत्वों का स्थूल शरीर है । पंचीकरण (—) आकाशादि पांचों भूतों के ईश्वर की प्रेरक शक्ति से एक एक के दो दो भाग बने । उन दो दो भागों में से एक एक अलग होगया दूसरे एक एक भाग के चार चार भाग बने उन चारों भागों में से एक चौथाई भाग अपने अर्धभाग को छोड़कर दूसरे भागों में मिला । जैसे आकाश के दो भाग हुए एक भाग अलग छोड़ कर दूसरे अर्ध भाग के चार भाग बने उन चारों भागों को एक आकाश में अपना छोड़कर दूसरा अग्नि में तीसरा जल में चौथा पृथ्वी में मिलाया इसी प्रकार पांचों भूतों के चौथाई चौथाई भाग दूसरों में मिल कर पंचिकरण हुआ । तदनन्तर समस्त ब्रह्माण्ड की रचना हुई तथा यह पच्चीस तत्वों का स्थूल शरीर रचा गया ।

पच्चीस तत्व ।

आकाश के पांच तत्व — काम, क्रोध, शोक, मोह, भय । वायु के पांच तत्व — चलन, बलन, धावन, प्रसारण, आकुंचन । तेज के पांच तत्व क्षुधा, तृषा, आलस्य, निद्रा, कान्ति । जल के पांच तत्व — शुक्र (शक्र), षोणित (श्रोणित), लार, मूत्र, स्वेद । पृथ्वी के पांच तत्व — अस्थि, मांस, नाड़ी, त्वचा, रोम इति । इन पांच पांच तत्वों में एक एक तत्व अपना है और दूसरे चार भूतों के मिले हैं । जैसे आकाश का मुख्य भाग शोक है । क्योंकि आकाश के समान शोक में भी शून्य अवस्था हो जाती है और काम आकाश में वायु का भाग मिला है तथा क्रोध आकाश में अग्नि का भाग मिला है । मोह आकाश में जल का भाग मिला है । भय आकाश में पृथ्वी का भाग मिला है । वायु के तत्वों में, प्रसारण (फैलाव) वायु में आकाश का भाग मिला है तथा धावन वायु का मुख्य अपना भाग है । बलन, तप्त वायु में तेज का भाग मिला है । चलन, वायु में जल का भाग मिला है । आकुञ्चन, वायु में पृथ्वी का भाग मिला है । अग्नि के तत्वों में निद्रा, आकाश का भाग मिला है । तृषा तेज में वायु का भाग मिला है । क्षुधा तेज का अपना मुख्य भाग है । कान्ति तेज में जल का भाग मिला है । आलस्य तेज में पृथ्वी का भाग मिला है । जल के तत्त्वों में, लार जल में आकाश का भाग है । स्वेद (पसीना) जल में वायु का भाग मिला है, मूत्र जल में तेज का भाग मिला है । वीर्य जल का मुख्य भाग है और रुधिर जल में पृथ्वी का भाग मिला है । पृथ्वी के तत्वों में रोम आकाश का भाग है, त्वचा पृथ्वी में वायु का भाग मिला है, नाड़ी पृथ्वी में अग्नि का भाग मिला है, मांस पृथ्वी में जल का भाग मिला है । अस्थि पृथ्वी में अपना मुख्य भाग है । इस प्रकार पांच भूतों के पच्चीस तत्त्वों का संघातरूप यह स्थूल शरीर है । अविचार से इस स्थूल शरीर में आत्म दृष्टि कर के 'स्थूलोऽहम्' 'कृशोऽहम्' 'काणोऽहम्' इत्यादि स्थूल शरीर के धर्मों को

अपने मान कर निरन्तर अभिमान करता है । तथा नाम, जाति, वर्ण आश्रम आदि धर्म अपने में जानता है, यह सब अज्ञान का प्रभाव है । वास्तव में ये धर्म स्थूलशरीर के हैं आत्मा के नहीं हैं । तथा इन पच्चीस तत्व रूप काम क्रोध लोभ मोह शोकादि के भाव को तथा अभाव को जानने वाला इन का प्रकाशक, इन से न्यारा, सदा एक रस रहने वाला आत्मा, उत्पत्ति नाश रहित इस स्थूल शरीर से न्यारा है । यह स्थूल शरीर मन्दिर है, आत्मा इसमें रहने वाला देव है । पंच महाभूतों का कार्य पच्चीस तत्व रूप ही है । जो जिसका कार्य होता है, वह कारण रूप ही है । अपने कारण से पृथक् होकर कार्य की स्थिति नहीं रह सकती । पंच भूतों के कार्य पच्चीस तत्वोंको अपने अपने कारण में लय करके अलग हो जाना चाहिये । जैसे किसी स्थान में किसी पुरुष को भूतावेश हो जावे तब किसी योग्य स्याने को बुला कर धूप दीप देकर मंत्र पढ़ के पांच सात वस्तु भेंट देकर विदा करे । तैसे इस जीवात्मा को आकाशादि पंच महाभूत लगे हुए हैं वे इसे कभी नहीं छोड़ते इन से बचने के लिये किसी योग्य सद्गुरु की शरण में जाकर जप, ध्यान, पूजा गुरु सेवा आदि धूप दीप देकर तथा वेद के महावाक्य रूप मंत्र पढ़ के एक एक भूत को पांच पांच तत्व रूप भेंट देकर सदा के लिये निवृत्त हो जाना चाहिये ।

अपंचीकृत पंच महाभूतों के सत्तरह तत्वों का सूक्ष्म शरीर है । पांच ज्ञान इन्द्रिय, पांच कर्मेन्द्रिय, पांच प्राण, एक मन, एक बुद्धि ये सत्तरह तत्व हैं । इन सत्तरह तत्वों के नाम तथा कारण रूप देवता और विषय यथा क्रम दिखलाते हैं ।

ज्ञानेन्द्रियों के नाम ।

श्रोत्र, त्वचा, नेत्र, जिह्वा, घ्राण, पांच ज्ञानेन्द्रियां हैं । इन की उत्पत्ति पांचों भूतों के न्यारे न्यारे सत्व गुण से है ।

देवता — आकाश, वायु, अग्नि, जल, पृथ्वी हैं ।
विषय — शब्द, स्पर्श, रूप, रस, गन्ध हैं ।

कर्मेन्द्रियां

वाक्, पाणि, पाद, उपस्थ, गुदा, पांच कर्मेन्द्रियां हैं । इन कि उत्पत्ति पांचों भूतों के न्यारे न्यारे रजोगुण से है देवत — अग्नि, इन्द्र, विष्णु, प्रजापति, यम ।
विषय — भाषण, ग्रहण, गमन, विषयभोग, विसर्ग ॥

पांच प्राणों कि उत्पत्ति पांचों भूतों के मिले हुए रजोगुण से है । प्राण, अपान, व्यान, उदान, समान, इस भेद से एक ही प्राण पांच प्रकार का है ॥

पंचभूतों के मिले हुए सत्वगुण से मन बुद्धि रूप अन्तःकरण हुआ है । मन का देवता चन्द्रमा है, बुद्धि का देवता ब्रह्मा है, चित्त और अहंकार का मन, बुद्धि के अन्तर्भाव है । इन सत्तरह तत्वों का सूक्ष्म शरीर है । सतरह तत्व पंचभूतों के कार्य हैं । आत्मा इन का दृष्टा (द्रष्टा) साक्षी इनको प्रकाशने वाला इन से न्यारा है । जैसे नृत्य शाला में एक दीपक जलता है और वहां पर राजा, मंत्री, सेवक गण तथा नायका, बजंत्री और तमाशा देखने वाले सभाके आदमी जब सभा में

बैठे हों तब भी वह दीपक सबको प्रकाशता है और जब कोई भी न रहे तब सब के अभाव में भी प्रकाशता है । इस से सिद्ध हुआ कि स्थूल देह रूप नृत्य शाला में साक्षी आत्मा रूप दीपक है और चिदाभास जीवात्मा रूप राजा है, मन प्रधान मंत्री है, पांच प्राण सेवक हैं, बुद्धि गायका है, दस इन्द्रियां बजंत्री हैं, पांच विषय सभा के लोग हैं । इन सब को जागृत स्वप्न में साक्षी आत्मा रूप दीपक प्रकाशता है तथा सुषुप्ति अवस्था में इन सब के अभाव को भी प्रकाशता है । जाग्रत में अन्तःकरण और इन्द्रियां दोनों की सहायता से आत्मा प्रकाश कर्ता है । और स्वप्न में केवल अन्तःकरण की सहायता से आत्म प्रकाश कर्ता है । सुषुप्ति में अन्तःकरण तथा इन्द्रियों के बिना ही स्वयं प्रकाश कर्ता है । तीनों अवस्थाओं में होने वाले व्यवहार का जो ज्ञान है वह भी आत्मा का प्रकाश है ।

कारण शरीर

जब अत्यन्त गाढ़ सुषुप्ति में बुद्धि की वृत्ति अपने कारण रूप अज्ञान में लय हो जाती है तब जागृत स्वप्न के पदार्थों का ज्ञान भी नहीं रहता केवल शून्य अवस्था रहती है । जब पुनः जागृत होता है तब स्मरण होता है कि मैं बड़े सुख से सोया कुछ भी खबर नहीं रही । यहां सुख तथा अज्ञान दो वस्तुओं की स्मृति होती है । इस से जाना जाता है कि सुषुप्ति अवस्था में इन्द्रियों का विषय सुख तो है नहीं केवल आत्मा का ही सुख है । और कुछ भी खबर नहीं इस स्मृति से अज्ञान भी प्रतीत होता है इसी वास्ते नहीं जानता है कि यह आत्मा का ही आनन्द है । यह बुद्धि की विलीन अवस्था रूप अज्ञान ही कारण शरीर है । इस कारण शरीर से ही स्वप्न जागृत यह दोनों शरीर उत्पन्न होते हैं । जागृत स्वप्नादि तीनों अवस्था तथा स्थूल सूक्ष्म कारण तीनों शरीरों में होने वाले भाव अभाव तथा अन्तःकरण की वृत्तियां इन सब को आत्मा ही अपनी सत्ता स्फूर्ति देता है । तथा सब का दृष्टा (द्रष्टा) है और सब से न्यारा है ॥

षट् ऊर्मि ॥ जन्म, मरण, भूख, प्यास, सुख, दुःख, यह षट् ऊर्मि संसार रूप सागर की लहरें हैं । षट् विकार ॥ जन्म, अस्तित्व, वृद्धि, विपरिणाम, अपक्षय, विनाश, यह षट् विकार, तथा षट् ऊर्मि स्थूल देह के धर्म हैं ।

आत्मा के धर्म नहीं हैं । आत्मा इन धर्मों का प्रकाशक है ॥

पंचकोष विवेक

कोष तलवार के म्यान को तथा धन के भण्डार को और कोषकार नामक जीव के गृह को कोष कहते हैं । इन कोषों की तरह अन्नमय आदिक पंच कोष भी आत्मा को आच्छादन करते हैं इस लिये यह भी कोष कहे जाते हैं । अन्नमय कोष (२) प्राणमय कोष (३) मनोमय कोष । (४) विज्ञानमय कोष । (५) आनन्दमय कोष यह पंच कोषों के नाम हैं ।

'अन्नमय कोष' माता पिता के खाये हुए अन्न के रज वीर्य द्वार माता के उदर में उत्पन्न होता है । तथा जन्म के पीछे क्षीरादि अन्न करके वृद्धि को प्राप्त होता है और मरण के अनन्तर अन्न रूप पृथ्वी में विलीन होता है ऐसा स्थूल शरीर

अन्नमय कोष कहा जाता है ।

यह जीवात्मा अपने असली स्वरूप को भूल कर इस अन्नमय कोष रूप स्थूल शरीरमें अहं भावना करता है और जीवात्मा के सुख दुःख के अनुभव रूप भोग का स्थान है इसलिये स्थूल शरीर अन्नमय कोष कहा जाता है ।

जन्म मरणादि धर्मों वाला, क्षण भंगुर अनियत स्वभाव, जड़, घटादिक पदार्थों के समान दृश्यमान अनेक अवयवों का समुदाय, अनन्त विकारों से संयुक्त यह अन्नमय कोष आत्मा होने के योग्य नहीं है । पंच भूतों का समुदाय तथा नेत्रादिक इन्द्रियां आत्मा से न्यारे हैं यह जो कुछ दृष्टिगोचर हो रहा है सब अज्ञान से उत्पन्न हुआ है । और ज्ञान द्वारा नष्ट हो जाता है । संकल्प से ही अनेक प्रकार की सृष्टि उत्पन्न होती है संकल्प शान्त होने पर सब नष्ट हो जाती है संकल्प तथा सर्व जगत् का एक आत्मा ही उपादान कारण है । जैसे रज्जु के असली स्वरूप को त्यागकर भ्रम से सर्प जानता है पश्चात् भय आदिक खेद को प्राप्त होता है तैसे आत्मा के सत्य स्वरूप को भूलकर मूढ़ बुद्धि पुरुष असत्य जगत् को सत्य जानता है पश्चात् अनेक जन्मजन्मान्तरों के दुःख भोगता है । और जब रज्जु के यथार्थ स्वरूप को जान लेता है तब सर्प की भ्रान्ति तथा भय आदिक खेद नहीं रहते तैसे सर्व के अधिष्ठान रूप आत्मा के साक्षात्कार होने पर यह दृश्यमान जगत् तथा जन्म मरणादिक सर्व दुःखों का अभाव हो जाता है ।

प्राणमय कोष

पांच कर्मेन्द्रिय तथा प्राण मिलकर प्राणमय कोष कहाता है । यह प्राणमय कोष पूर्वोक्त अन्नमय कोष को व्याप्त करके अर्थात् प्राणमय कोष से संयुक्त होकर ही यह अन्नमय कोष रूप स्थूल शरीर समस्त क्रिया में प्रवृत्त होता है । कारण यह है कि प्राण रजोगुण का कार्य होनेसे क्रियाशक्तिवाला होता है । प्राण के विद्यमान रहते ही यह स्थूलदेह कार्य में प्रवृत्त हो सकता है, अन्यथा नहीं । यह प्राण वायु का विकार होने से तथा अन्दर व बाहर आने जाने वाला होने से अपने इष्ट अनिष्ट को भी नहीं जानता न अपने आपको ही जानता है । अतएव यह प्राणमय कोष आत्मा नहीं हो सकता । आत्मा इन विकारों को जाननेवाला इनसे पृथक् है प्राण जड़ है । आत्मा ज्ञानस्वरूप है । प्राण परतन्त्र है आत्मा स्वतन्त्र है ।

मनोमय कोष

पंच ज्ञानेन्द्रिय, तथा मन, मिलकर मनोमय कोष कहा जाता है । मनोमय कोष सब वस्तुओं में 'अहं' 'मम' भाव की कल्पना का हेतु है । तथा नाम आदि कल्पना भी मन से ही होती है, पंच ज्ञानेन्द्रिय रूप पंच होता और विषय भोग रूप घृत तथा अनेक प्रकार की वासना रूप ईधन से प्रज्ज्वलित हुई यह मनोमय अग्नि समस्त प्रपंच को उत्पन्न करती है । संसार में जीवात्मा के बन्धन का हेतु जो अविद्या है वह मन ही है । मनसे अतिरिक्त कोई अन्य अविद्या नहीं है क्योंकि मन के स्फुरण काल में ही जगत् की प्रतीति होती है और मन के निःस्पन्दनकाल में जगत् का अभाव हो जाता है । स्वप्न काल में समस्त पदार्थों के अभाव होते

हुए भी भोक्ता भोग्यादि विश्व को अपनी संस्काररूपी वासना से उत्पन्न करता है । यह सब मन का ही स्वभाव है, इसी प्रकार जाग्रत् अवस्था में भी कुछ विशेषता नहीं है । सब कुछ मनका ही संकल्प है । तथा सुषुप्तिकाल में जब मन अपने कारण रूप अविद्या में लीन हो जाता है तब सब प्रपञ्च का भी अभाव हो जाता है यह सब को विदित है । इसलिये पुरुष के वास्ते संसार की कल्पना का मन ही कारण है मन से अतिरिक्त संसार कोई वस्तु नहीं है । जैसे वायु से प्रेरित होकर मेघमण्डल आजाते हैं तथा पुनः अन्यत्र चले जाते हैं इसी प्रकार मन से बन्धन होता है तथा मन से ही मोक्ष होता है । कहा भी है —

मन एव मनुष्याणां कारणं बन्धमोक्षयोः

देह से आदि लेकर विषय भोगों में प्रीति करने से पुरुष पशु के समान बन्धन को प्राप्त होता है और जब इन देहादि विषय भोगों में वैराग्य होता है तब यह पुरुष बन्धन से मुक्त हो जाता है । रज, तम गुण से मलीन हुआ मन बन्धन का हेतु है और सत्वगुण से शुद्ध हुआ मन मुक्ति का हेतु है । देह, इन्द्रिय, प्राण रूप रज्जु से असङ्ग, चिद्रूप, आत्मा को सम्मोह करके बन्धन को प्राप्त कर नित्य प्रति 'अहं' 'मम' इस प्रकार मन अपने कल्पित किये हुये कर्म फल भोगों में भ्रमाता रहता है । इस वास्ते तत्त्वदर्शी पण्डितों ने मन को ही अविद्या नाम से कथन किया है ।

मुमुक्षु जनों को मन का शोधन करना ही मुख्य कार्य है । मन के शुद्ध होने पर मुक्ति हस्तामलकवत् तत्काल ही प्राप्त हो जाती है । मन को शोधने का यही उपाय है 'मोक्ष में दृढ़ आसक्ति' विषय भोगों में दृढ़ वैराग्य व्यावहारिक कर्मों की निवृत्ति अर्थात् संन्यास ग्रहण कर परमात्मा में पूर्ण श्रद्धा से जो पुरुष श्रवण, मनन, निदिध्यासन में निष्ठा वाला है वह बुद्धि के राजसी स्वभाव को निवृत्त करता है । यह मनोमय कोष भी आदि अन्त वाला तथा परिणामी होने से परमात्मा नहीं हो सकता क्योंकि दुःख रूप होने तथा विषयों का हेतु साधन होने से सब का द्रष्टा जो आत्मा है, वह मनोमय दृश्यरूप नहीं हो सकता ।

विज्ञानमय कोष

पञ्चज्ञानेन्द्रिय तथा बुद्धि मिल कर "विज्ञानमय कोष" कहा जाता है । यह विज्ञानमय कोष संसारबन्धन का कारण है । सच्चिदानन्दस्वरूप आत्मा के प्रतिबिंब की शक्ति को ग्रहण करके प्रकृति का विकार रूप तथा ज्ञान रूप क्रिया वाला निरन्तर देह, इन्द्रियादिकों में 'अहं' 'अहं' इस प्रकार का अभिमान करने वाला विज्ञान नाम वाला चतुर्थकोष है । यह जीवात्मा का 'अहं' स्वभाव अनादिकाल का है तथा जीव के समस्त व्यवहार का चलाने वाला है । तथा पूर्वकाल की वासना से बंधकर शुभाशुभ कर्मों का कर्ता तथा उसके फल का भोक्ता है और कर्मानुसार ही अधः ऊर्ध्व गति को प्राप्त होता है इस ही विज्ञानमय कोष की जाग्रत्, स्वप्न, सुषुप्ति, ये तीन अवस्थायें हैं और सुख दुःख का भोगने वाला तथा देह के आश्रित जो गृहस्थादि आश्रम तथा सन्ध्योपासनादि धर्म तथा यज्ञादि कर्म

और शील व्रतादि गुण, इन में यह मेरा धर्म है तथा यह मेरा कर्म है इस प्रकार का अभिमान करता है और परमात्मा के अत्यन्त निकट होने के कारण यह अत्यन्त प्रकाश वाला विज्ञानमय कोष है । अतएव यह विज्ञानमय जिन पूर्वोक्त धर्मादिक उपाधियों में भ्रम से आत्म बुद्धि करके इतस्ततः घूमता रहता है वह हृदय में तथा प्राणों में ज्योति रूप से स्फुरण होता हुआ तथा कूटस्थ आत्मा होता हुआ भी यह 'विज्ञानमय' उपाधियों के सम्बन्ध से कर्ता भोक्तारूप है । उपाधि के वश होकर यह विज्ञानमय बुद्धि के परिच्छिन्नत्व भाव को अपने आप में मानकर सर्वात्मक होकर भी सबको अपने से भिन्न मानता है जैसे घट आपको मृत्तिका से अलग माने जैसे निर्विकार अग्नि भी चौकोरादि लोहे के आकार को प्राप्त होकर विकारवान् प्रतीत होता है, तैसे उपाधियों के सम्बन्ध वश होकर निर्विकार सदा एकरस रहने वाला भी आत्मा उपाधि के गुणों को अपने आप में अनुभव करता है, जो अपना आप हि दृष्टा (द्रष्टा) है तथा निर्गुण है अकर्मण्य है, सब के अन्दर विद्यमान, ज्ञान स्वरूप तथा आनन्द रूप होकर भी बुद्धि की भ्रान्ति से यह जीव भाव को प्राप्त होता है । सो यह सत्य नहीं है । क्योंकि मोह के निवृत्त होने पर जीवभाव स्वतः ही नहीं ठहरता । अवस्तु रूप होने से जब तक भ्रान्ति है तब तक जीव भाव है । क्योंकि मिथ्या ज्ञान और प्रमाद से उत्पन्न हुआ है । जैसे रज्जु स्थान में सर्प की प्रतीति भ्रान्तिकाल में ही होती है भ्रान्ति के निवृत्ति कालमें नहीं रहती । आत्मा के साथ जो बुद्धि का सम्बन्ध है वह मिथ्या ज्ञानसे हुआ है उसकी निवृत्ति यथार्थ ज्ञानसे ही हो सकती है अन्यथा नहीं ब्रह्मात्मा के एकत्व भाव को विषय करने वाला ज्ञान यथार्थ ज्ञान है । यह ज्ञान आत्मा अनात्मा के विवेक से सिद्ध होता है । इसलिये आत्मा, अनात्मा का विवेक ही कर्तव्य है । मिथ्या भावों की निवृत्ति होने पर ही सच्चिदानन्द स्वरूप आत्मा की हृदय स्थान में प्रतीति होने लगती है । इस वास्ते अहंकारादि अनात्मक वस्तुओं का सर्वथा निराकरण करना योग्य है । यह विज्ञानमय भी विकारवान् तथा जड़ और परिच्छिन्न होने से तथा दृश्यरूप और व्यभिचारी अर्थात् एक अवस्था में न रहने वाला अनित्य स्वभाव वाला होने से परमात्मा रूप नहीं है । विज्ञानमय कोष एकदेशी है आत्मा सबदेश व्यापी है । विज्ञानमय दृश्य है, परमात्मा दृष्टा (द्रष्टा) है । विज्ञानमय अनित्य है, परमात्मा नित्य है । इसलिये विज्ञानमय कोष का दृष्टा (द्रष्टा) आत्मा विज्ञानमय से पृथक् है ।

आनन्दमय कोष

आनन्द स्वरूप आत्मा के प्रतिबिम्ब को ग्रहण करने वाली अज्ञान की वृत्ति को जो प्रिय, मोद, प्रमोद गुण रूप से अपने इष्ट पदार्थ के लाभ तथा भोग होने पर उदय होता है अथवा पुण्य कर्म कर्ता के पुण्य के अनुभव काल में जिसका भान होता है जिस आनन्दमय को प्राप्त होकर प्राणीमात्र बिना प्रयत्न ही भले प्रकार आनन्दित होते हैं । इस आनन्दमय की विशेष स्फूर्ति तो सुषुप्ति अवस्था में ही होती है और यत्किञ्चित्प्रतीति स्वप्न, जाग्रत् में भी अपने इष्ट पदार्थ के दर्शनादि से होती है इसी आनन्दमय को ब्रह्म का स्वरूप भूत आनंद कहा है ॥

यस्माज्जातं जगत्सर्वं यस्मिन्नेव प्रलीयते ।
येनेदं धार्यते सर्वं तस्मै ज्ञानात्मने नमः ॥

त्वंपद विवेकान्तर्गत जो पांचवां आनन्दमय कोष है उसको विशेष रूप से तैत्तिरीय उपनिषत् में कहे हुए पांच पांच अवयवों वाले पक्षी रूप से उन पंच कोषों को यहां पर दिखलाते हैं जिन कोषों के द्वारा उस परं ब्रह्म परमात्मा का ज्ञान होता है । जो सर्वान्तर्यामि, सर्वेश्वर, सर्वशक्तिमान्, सर्वज्ञ, सर्व का आत्मा ईश्वर है, जिस के जानने से अज्ञान तत्काल नष्ट होकर परमानन्द स्वरूप ब्रह्म की प्राप्ति होती है । यथा 'ब्रह्मविद्ब्रह्मैव भवति' । ब्रह्म का ज्ञाता ब्रह्मरूप ही होता है । तथा च 'ब्रह्मविदाप्नोति परम्' । ब्रह्म का जानने वाला परम पुरुषार्थ रूप ब्रह्म को ही प्राप्त होता है । अब जिन लक्षणों द्वारा वह ब्रह्म जाना जाता है उन लक्षणों को कहते हैं । 'सत्यं ज्ञानमनन्तं ब्रह्म' । जो ब्रह्म मिथ्या असत्य भाव वाला न होने से सत्य है जड़ अज्ञान के अभाव वाला होने से ज्ञान स्वरूप है और अन्त वाला न होने से अनन्त है । ब्रह्म की अनन्त रूपता अन्यत्र भी कही है :—
न व्यापित्त्वाद्देशतोऽनन्तो नित्यत्त्वान्न च कालतः ।
न वस्तुतोऽपि सार्व्यात्मादानन्तं ब्रह्मणं (ब्रह्माणं) त्रिधा ॥
सर्वत्र व्यापक होने से ब्रह्म देश से अन्त वाला नहीं है, सर्व काल में सत्य स्वरूप नित्य एक रस रहने वाला होने से काल से अन्त वाला नहीं है, सर्वका आत्मा होने से वस्तु से अन्त वाला नहीं है । भाव यह है कि किसी देश में परमात्मा है और किसी दूसरे देश में नहीं है ऐसा नहीं क्योंकि 'आकशवत् सर्वगतश्च नित्यं' । इस श्रुति वाक्य से ब्रह्म सर्व देश में व्यापक है 'नित्यं' नित्य कहने से ब्रह्म सर्व काल में है । ऐसा नहीं जो किसी काल में हो और किसी काल में नहीं हो । सर्वान्तर्यामि कहने से सर्व के अन्तर रहने वाला हुआ इस लिये किसी वस्तु में है किसी में नहीं ऐसा नहीं किन्तु 'तदन्तरस्य सर्वस्य' । वह परमामा सर्व के अन्तर है इसलिये वस्तु से अन्त वाला नहीं है । उस अखण्ड ब्रह्म को हृदयाकाश में बुद्धि रूपी गुहामें साक्षी रूप से स्थित जो पुरुष जानता है वह विद्वान् इसी शरीर में सर्व वस्तुओं की कामना को प्राप्त करलेता है ।

'तस्माद्वा एतस्मादात्मन आकाशः संभूतः आकाशाद्वायुः
वायोरग्निः अग्नेराप अङ्ग्यः पृथिवी पृथिव्या ओषधयः
ओषधीभ्योन्नम् अन्नात्पुरुषः ' ।

सत्, चित्, आनन्द स्वरूप ब्रह्म है उसी सर्व के आत्मा रूप परम कारण ब्रह्म से यह शब्द गुण वाला अवकाश रूप आकाश उत्पन्न हुआ । आकाश से शब्द तथा स्पर्श गुण वाला वायु उत्पन्न हुआ । वायु से शब्द, स्पर्श तथा रूप गुण वाला अग्नि उत्पन्न हुआ । अग्नि से शब्द, स्पर्श, रूप, रस गुणों वाला जल उत्पन्न हुआ । जलसे शब्द, स्पर्श, रूप, रस तथा गन्ध गुण वाली पृथिवी उत्पन्न हुई, पृथिवी से वृक्षादि औषधि उत्पन्न हुई, औषधि से अन्न उत्पन्न हुआ, अन्न से वीर्य द्वारा पुरुष उत्पन्न हुआ, 'स वा एष पुरुषो अन्नरसमयः' । वह अन्न का सार भूत शुक्रमय यह

प्रसिद्ध देह रूप पुरुष है उसका यह प्रत्यक्ष शिर ही शिर है । यह दाहिना बाहु उत्तर पक्ष है ।

यह वाम भुजा उत्तर पक्ष है । कण्ठ के नीचे तथा कटि भाग से ऊपरका मध्य भाग आत्मा है । कटि भाग से नीचे दोनों पाद पुच्छ के आकार वाले होने से प्रतिष्ठा आधार है । जिस अन्न का विकार रूप यह अन्नमय कोष है वह अन्न पृथिवी के आश्रित है । अन्न से ही समस्त जीव उत्पन्न होते हैं, अन्न से ही जीवन को धारण करते हैं और अन्त में अन्न में ही प्रवेश करजाते हैं । अन्न ही सर्व भूतप्राणियों में बड़ा है और सर्व प्राणिमात्र के क्षुधा रूपी रोगकी औषधि है । इसी लिये अन्न सब भूतों में बड़ा है तथा ओषधि रूप होने से सब का कारण है । इस लिये जो अन्न को ब्रह्म रूप जानते हैं वे सर्व प्रकार से अन्न को प्राप्त करते हैं । अन्न को सब प्राणी खाते हैं और अन्न भी सब प्राणियों को खाता है । इस लिये सर्वं अन्नमेव सब कुछ अन्न रूप ही है ।

पूर्व कहे हुवे अन्नमय से भीतर वायु रूप गौण आत्मा प्राण मय और है । उस अन्नमय शरीर के आकार वाला यह प्राणमय भी है क्योंकि जैसा जैसा आकार शरीर का था वैसा वैसा ही आकार शरीर में पूर्ण होने के कारण प्राण का भी सांचे में डाले हुवे द्रव्यों कि न्याई तदाकार बन जाता है । उसका यह प्रसिद्ध प्राण ही शिर है उसका व्यान दक्षिण पक्ष है, अपान वायु जो गुदा स्थान में रहता है वह उत्तर पक्ष है, देह के मध्य भाग के आकाश में स्थित समान वायु आत्मा है, और ऊर्ध्व को गमन करने वाल उदान वायु का आधार भूत पृथिवी देवता स्थिति का हेतु होने से पुच्छ के समान प्रतिष्ठा आधार है । प्राण से ही मनुष्य तथा पशु आदि और सब इन्द्रियां चेष्टा करते हैं और प्राण ही सब के जीवन का हेतु है । इसलिये प्राण को सर्व आयु कहा है । जो प्राण को ब्रह्म रूप से जानते हैं वह समस्त आयु को पूर्ण रूप से भोगते हैं । उस अन्नमय का यह प्राणमय ही आत्मा है । उस प्राणमय के अन्तर गौण आत्मा रूप मनोमय और है ।

उससे यह मनोमय (प्राणमय ?) पूर्ण है अर्थात् पूर्वोक्त कोषों के समान आकृतिमान है । उसका यजुर्वेद शिर है, ऋग्वेद दक्षिण पक्ष है, साम वेद उत्तर पक्ष है, आदेश जो ब्राह्मण भाग है वह आत्मा है, और अथर्वा अङ्गिरस आदि मन्त्र दृष्टा (द्रष्टा) ऋषियों के मनोवृत्ति रूप अथर्वणादि वेद पुच्छ प्रतिष्ठा रूप हैं ।

यतो वाचो निवर्तन्ते अप्राप्य मनसा सह ।
आनन्दं ब्रह्मणो विद्वान्नबिभेति कुतश्चनेति ॥

वेद रूप वाणी तथा उस वाणी के विषय को विचार करने वाला मन, उस ब्रह्म को निर्गुण तथा अप्रमेय रूप होने से घटादि पदार्थों के समान साक्षात् ग्रहण करने में असमर्थ होकर निवृत्त हो जाते हैं । ब्रह्मको वेद रूप वाणी निरूपण नहीं कर सकती, तथा मन विषय नहीं कर सकता है । इस प्रकार के आनन्द स्वरूप ब्रह्म को जो उपासते हैं वह संसारी जीवों के समान सांसारिक दुःखों से दुःखित नहीं होते हैं । वह तो ब्रह्मानन्द को भोगते हैं । उस प्राणमय का यह मनोमय ही

आत्मा है । उस मनोमय के अन्तर गौण आत्मा रूप विज्ञानमय कोष है । उस से यह विज्ञानमय पूर्ण है । पूर्व पूर्व कोषों के समान ही उत्तर उत्तर कोष आकृति वाले हैं । निश्चयात्मिका बुद्धि की निश्चय रूप वृत्ति श्रद्धा विज्ञानमय का शिर है बाह्य पदार्थों में मन का निश्चय रूप ऋत दक्षिण पक्ष है, संशयादि रहित सत्य उत्तर पक्ष है, बुद्धि की एकाकारता रूप योग आत्मा है, बुद्धि में स्थित चिदाभास रूप महत्व पुच्छ प्रतिष्ठा है, विज्ञानवान् पुरुष ही श्रद्धादि पूर्वक यज्ञों को करता है । तथा विज्ञान पूर्वक ही समस्त कर्म किये जाते हैं । विज्ञान के बिना यज्ञादि कर्म कुछ भी नहीं हो सकते । इसलिये सर्व के कारण रूप विज्ञान को ब्रह्म भावना करके इन्द्रादि देवता उपासना करते हैं । विज्ञान को सर्व का कारण रूप ब्रह्म जान कर उस भावना को जो कभी नहीं छोड़ते हैं वह शरीर कृत पापों को नाश करके सर्व भोगों को स्वच्छन्द भोगते हैं ।

'तस्माद्वा एतस्माद् विज्ञानमयात् अन्योन्तर आत्मानन्दमयः' ।

उस विज्ञानमय के भीतर गौण आत्मा रूप आनन्दमय और है । उस विज्ञानमय की समानता वाला होने से यह आनन्दमय भी पूर्ण है । अब आनन्दमय की स्पष्टता के लिये अन्तःकरण का स्वरूप दिखलाते हैं । देह के अन्दर होने वाले सुख दुःख के ज्ञान का साधन होने से अन्तःकरण नाम है । अन्तःकरण की सात्विक वृत्ति दो प्रकार की है । एक निश्चय रूप वृत्ति है और दूसरी सुखाकार वृत्ति है । निश्चय वृत्ति वाला अन्तःकरण बुद्धि नाम से कहा जाता है तथा विज्ञानमय भी इसी को कहते हैं । इसी विज्ञानमय की उपाधि के सम्बन्ध से जीवात्मा कर्त्ता, ज्ञाता, प्रमाता इत्यादि नामों वाला कहा जाता है । दूसरी सुखाकार वृत्ति वाले अन्तःकरण विशिष्ट हुआ जीवात्मा भोक्ता कहा जाता है । उस सुखाकार वृत्ति के प्रिय, मोद, प्रमोद यह तीन भेद हैं जो कि आनन्दमय के अवयव रूप कहे गये हैं । अपने लिये वाञ्छित इष्ट वस्तु के दर्शन से प्रिय रूप सुख की वृत्ति उत्पन्न होती है, वाञ्छित वस्तु की प्राप्ति से मोद रूप वृति उत्पन्न होती है, और वाञ्छित वस्तु के भोग से प्रमोद वृत्ति उत्पन्न होती है । उस आनन्दमय का प्रिय वृत्ति शिर है, मोद वृत्ति दाहिना पक्ष है, और आनन्द रूप ब्रह्म ही आत्मा है । प्रियमोदादिकों में सुख के अवयव रूप से जो ओत प्रोत है, तथा जिस परमात्मा के आनन्द की एक थोड़ी सी मात्रा से यह समस्त प्राणधारी जीव अपने जीवन को धारण करते हैं उसी परब्रह्म परमात्मा से आकाशादि पंचभूत तथा अन्नमयादि पंच कोष चैतन्यता वाले हैं । वह ही ब्रह्म पुच्छ प्रतिष्ठा रूप है । अविद्या कल्पित समस्त द्वैत प्रपंच का जिस में अवसान होता है वह ही अद्वितीय ब्रह्म प्रतिष्ठा है । तथाच ।

'यत्र नान्यत्पश्यति नान्यच्छृणोति नान्यत् विजानाति
स भूमा' ॥

जिस ब्रह्म ज्ञान की अवस्था में प्राप्त होकर पुरुष अद्वैत रूप ब्रह्म से भिन्न न कुछ देखता है न कुछ सुनता है न कुछ जानता है वह ही अद्वितीय ब्रह्म प्रतिष्ठा

है । 'यो वै भूमा तदमृतमथ यदल्पं तन्मर्त्यं' ॥ जो भूमा अर्थात् जो ब्रह्म तथा ब्रह्म का ज्ञाता है वह तो अमृत है अर्थात् मरण धर्म से रहित है, और वस्तु ब्रह्म से पृथक् मानी हुई है वह नाशवान है । उपरोक्त भूमा के महत्व को सुन कर नारदमुनि पुनः सनत्कुमार से बोले कि हे भगवन् ! वह भूमा किस के आधार पर स्थित है ! तब सनत्कुमार ने कहा कि अपनी ही महिमा में स्थित है अर्थात् उससे परे कोई नहीं जिसकी महिमा में स्थित होवे बल्कि वह परमात्मा ही सब को धारण करता है ।

'पश्यन्नेवमन्वान एवं विजानन्नात्मरतिरात्मक्रीड आत्म
मिथुन आत्मानन्दः स स्वराड् भवति तस्य सर्वेषु लोकेषु
कामचारो भवति' ॥

जो पुरुष अजर अमर अद्वितीय आत्मा को आकाश के समान परिपूर्ण रूप से व्यापक देखता है वह विद्वान्, विज्ञान वाला, आत्मा में ही रमण करने वाला होता है । तथा लोक प्रसिद्ध क्रीडा वर्जित आत्मा की स्मृति रूप क्रीडा वाला होता है, दूसरे की अपेक्षा बिना ही विद्वान् द्वन्द जनित (???) (रहित) आनन्द को आत्मा में ही अनुभव करता है, संसारी जीवों को शब्दादि विषयों द्वारा जो आनन्द होता वह आनन्द विद्वान् को बिना ही निमित्त के सदैव काल रहता है । उक्त लक्षणों वाला विद्वान् जीवित शरीर में ही स्वाराज्य सुख को भोगता है और सर्व लोकों में स्वेच्छाचारी होता है अर्थात् उसकी आज्ञा सब के ऊपर होती है ।

इस प्रकार से आत्मा के जानने वाला विद्वान् फिर मृत्यु को तथा रोग जनित अनेक दुःखों को नहीं देखता है किन्तु वह सर्वत्र में अपना आत्मा ही देखता है ।